पर्वतीय क्षेत्रों में एडले (जॉब्स टीयर) उत्पादन बढ़ाने की उन्नत तकनीकी

एडले ग्रामिनी कुल का 3-8 फुट तक बढ़ने वाला पौधा होता है, जिसके बीज आंसुओं की शक्ल के होते हैं। इसलिए इसे जाब्स-टीयर के नाम से भी जाना जाता है। एडले को हिन्दी में संकरू, मराठी में रनमखा, बंगाली में गुरगुर तथा खासी पाहाड़ियों में सोहरियु के नाम से जाना जाता है। इसके फल नाषपाती की षक्ल के होते हैं जिनमें सफेद या भूरे रंग के चावल के जैसे बीज होते हैं। एडले की उत्पत्ति भारत का उत्तरी-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र एवं मेन्मार माना जाता है क्योंकि इन क्षेत्रों में एडले का जैविक विविधिता पायी जाती है। इसकी खेती भारत में 3000-4000 साल पुरानी माना जाता है। अल्पप्रयुक्त खाद्यान्न एवं चारे के रूप में प्रयोग करने के लिए उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है। एडले की खेती समुद्र तल से लेकर 5000 फुट तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में वर्षा के मौसम में की जा सकती है।

पौष्टिकता

एडले के बीज पोषक तत्वों अत्यन्त धनी एवं गुणकारी हैं। चावल की तुलना में अधिक प्रोटीन, वसा एवं खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। एडले के 100 ग्राम बीज से 380 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है और इसके बीजों में 15.4 ग्राम प्रोटीन, 6.2 ग्राम वसा, 65.3 ग्राम शर्करा, 0.8 ग्राम रेषा, 25 मि.ग्रा. कैल्षियम, 435 मि.ग्रा. फास्फोरस और 0.5 मि.ग्रा. लोहा, 0.28 मि.ग्रा. थायमाइन, 0.19 मि.ग्रा. राइवोफ्लेविन और 4.3 मि.ग्रा. नाइसीन पाया जाता है। जिससे यह प्रतीत होता है कि इन सभी पोषक तत्वों की मात्रा चावल की तुलना में अच्छी होने से एडले पौष्टिक आहार के रूप में अपनाया जा सकता है और इसे चावल के स्थान पर विभिन्न व्यंजनों में प्रयोग में ला सकते हैं।

उपयोगिता

एडले के बीजों से नागा जन-जाति के लोग डेजू नामक मादक द्रव्य किये जाते हैं। एडले के फलों को पेषाब सम्बंधी बीमारियों के लिए प्रयोग किया जाता है। जो किस्म खाद्य नहीं होती उनके बीज सख्त होते हैं उन्हें माला या पर्दे बनाने के काम में लाया जाता है। इसकी पत्तियों से पशुओं के लिए अचछा चारे के रूप में प्रयोग लिया जाता है और इससे साइलेज भी बनाया जाता है।

उन्नत किस्में/उत्कृष्ट जननद्रव्य

एडले के लिए कोई भी उन्नत किस्म विकसित नहीं की गई है लेकिन राष्ट्रीय पादप अनुवांषिक संस्थान ब्यूरो के षिलौंग केन्द्र पर 80 से अधिक जनन द्रव्यों का संग्रह किया है जिसका अखिल भारतीय समन्वित अल्पप्रयुक्त फसल अनुसंधान नेटवर्क के तहत उत्कृष्ट जनन द्रव्य की पहचान की गई है।

1. एच-2287 (आई.सी. 012711): नागालैंड के स्थानीय जगह पेरन से इकट्ठा करके एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित

किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 7.8 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 7.7 प्रतिषत पाई जाती है।

2. एच-2279 (आई.सी. 012703): नागालैंड के स्थानीय जगह पेरन से इकट्ठा करके एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 7.24 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 10.6 प्रतिषत पाई जाती है।

3. एच-0626 (आई.सी. 089389): नागालैंड के स्थानीय जगह लैफामी से इकट्ठा करके एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 6.4 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 9.2 प्रतिषत पाई जाती है।

4. एच-0732 (आई.सी. 089390): नागालैंड के स्थानीय जगह सेंगसेंन्निओ से इकट्ठा करके एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 6.4 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 7.2 प्रतिषत पाई जाती है।

5. ए.ए.एच.-33 (आई.सी. 089385): अरूणाचल प्रदेष के स्थानीय जगह टैंगो से इकट्ठा करके एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 6.2 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 9.6 प्रतिषत पाई जाती है।

6. मयून लोकल: मेघालय के एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 6.7 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 8.3 प्रतिषत पाई जाती है।

7. पोलीन लोकल: मेघालय के एन.बी.पी.जी.आर. षिलौंग केन्द्र से विकसित किया गया है जिसकी उत्पादन की क्षमता 6.1 कुन्टल प्रति हैक्टेयर है। इसके बीजों में प्रोटीन की मात्रा 8.6 प्रतिषत पाई जाती है।

जलवायु

खाद्यान्न के लिए एडले की खेती 5000 फुट की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में की जाती है। इसे उगाने के लिए तापमान 9.62 डिग्री सैल्षियस से 27.8 डिग्री सैल्षियस के बीच में और वार्षिक वर्षा 61 से.मी. से 430 से.मी. के बीच में होनी चाहिए।

भूमि

कम उपजाऊ एवं समस्याग्रस्त पथरीली जमीन पर भी सफलता पूर्वक उगाई जा सकती है। टिकाऊ खेती के लिए अच्छे जल प्रबन्धक भूमि का चयन करना चाहिए। वैसे इसे सभी पर्वतीय मिट्टी में उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

बिजाई के समय मिट्टी भुरभुरी होने से बीज का मिट्टी से सही सम्पर्क हो जाता है। इसके लिए 2-3 बार जुताई करके पाता लगा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखें कि बिजाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी हो।

खाद एवं उर्वरक

साधारतया किसान एडले की फसल में सन्तुलन एवं सही तरीके से खाद एवं उर्वरकों का इस्तेमाल नहीं करते हैं। प्राय: भूमि की उर्वरा षक्ति कम होने के कारण पैदावार कम हो जाती है। सामान्य रूप से 60 से 80 क्विंटल गोबर की सड़ी हुई खाद, 40 किलो नाइट्रोजन, 20 किलो फास्फोरस से 20 किलो पोटाष देने से उत्पादन में वृद्धि हो सकती है। गोबर की खाद को खेत की अन्तिम जुताई से पहले बराबर से बिखेर कर जुताई करनी चाहिए जबकि उर्वरक अन्तिम तैयारी के समय भूमि में डाल देना चाहिए।

बीज की मात्रा

बीज की प्रति हैक्टेयर मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि किस विधि से बुवाई करनी है। सामान्यत: 6-10 किलो बीज प्रति हैक्टेयर के हिसाब से जरूरत होती है।

बुवाई का समय

एडले की बुवाई मानसून आने के बाद मई-जून में की जाती है।

बुवाई की विधि

प्राय: किसान पर्वतीय क्षेत्रों में एडले की बुवाई छिटकवां विधि से करते हैं इस विधि में समय कम लगता है और सुगमता भी रहती है परन्तु उपज कम मिलती है। अत: अधिक उत्पादन के लिए बुवाई हमेषा पंक्तियों में करनी चाहिए जिससे फसल की देखभाल करना सरल होता है। पौधों की बढ़वार अच्छी होती है और पैदावार अधिक मिलती है। कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. व पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. रखना चाहिए।

सिंचाई प्रबन्ध

साधारतया: एडले को वर्षा पर निर्भर फसल के रूप में उगाया जाता है। इसलिए यदि समय पर और उचित वर्षा होती रहे तो अतिरिक्त सिंचाई की आवष्यकता नहीं पड़ती है। समय पर वर्षा न हो तो आवष्यकतानुसार 2 से 3 सिंचाई करनी चाहिए।

निराई-गुड़ाई

फसल बुवाई के 5 से 6 दिन से ही खरपतवार निकल आते हैं। फसल के साथ उगे खरपतवार पौषक तत्व, स्थान, धूप आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिसके कारण पौधों के विकास व बढ़वार पर प्रभाव पड़ता है। अत: बिजाई के 3-4 सप्ताह पष्चात् निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को समाप्त कर देना चाहिए।

उपज

एडले की फसल 4 से 5 माह में पक कर तैयार हो जाती है। इसकी औसतन उपज 8-10 कुन्टल प्रति हैक्टेयर की दर से उत्पादन होता है यदि उपरोक्त अनुसार उन्नत किस्में एवं जननद्रव्य एवं फसल पद्धतियों को अपनाकर एडले की 10-15 कुन्टल प्रति हैक्टेयर के हिसाब से पैदावार ली जा सकती है।

कीट-ब्याधि नियंत्रण

एडले में ज्यादातर कवक एवं सूत्रकर्मी का प्रकोप ज्यादा होता है। कोई भी कवकनाषी एवं सूत्रकर्मी नाषी रसायन का प्रयोग करके इनका रोकथाम किया जा सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक उत्पादन लेने के लिए हमें सभी प्रकार की उत्पादन तकनीकियों को अपनाकर न केवल उपज बढ़ेगी बल्कि जन-जाति एवं पिछड़े पहाड़ी क्षेत्रों के किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी और साथ ही साथ में सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार की उपलब्धता बढ़ेगी।

एच.एल. रैगर, आर.पी. दुआ, बी.एस. फोगाट एवम् एस.के. षर्मा

राष्ट्रीय पादप आनुवांषिकी संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली - 110 012